सत्यांश

अकेलापन : समस्या के समाधान तक

अकेलेपन को प्रायः समस्या की तरह देखा जाता है, पर आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं का यह समाधान भी हो सकता है, इस ओर ध्यान नहीं रहता। अकेलेपन में कोई संगी-साथी नहीं होता, लेकिन ऐसा कौन होगा, जिसका कोई-न-कोई दोस्त न हो। अपनी-अपनी हैसियत के हिसाब से सबका थोड़ा-बहुत परिचय, संपर्क, संबंध होता है। यह अलग बात है कि इन संबंधों, रिश्ते-नातों व हित-मित्रों के रहते भी अजनबीपन व सूनापन महसूस होता है। हार्दिक लगाव की कमी तथा आत्मीयता का ह्रास इसका मुख्य कारण है। इस प्रकार अकेलापन सिर्फ अकेले होने की स्थिति नहीं है, वरन् बहुतों के साथ रहते हुए आत्मीय लगाव के अभाव में खालीपन महसूस करने की दशा है। आजकल इसी प्रकार के अकेलापन से लोग अधिक जूझ रहे हैं। अत्यधिक जनसंख्या के कारण लोगों के अभाव वाला अकेलापन सुलभ नहीं है। न चाहकर भी भीड़ का सामना होता है। जहाँ दस की जगह है, वहाँ पन्द्रह लोग हो जाते हैं। जेल में भी आदमी अकेला नहीं रहता। वहाँ जितने लोगों के लिए जगह नियत होती है, उनसे दुगुने-तिगुने लोगों को ठूँसकर रखा जाता है। अब किसी व्यक्ति या परिचित या संपर्क के अभाव की वजह से अकेले रहने वाले लोग गिने-चुने ही मिलेंगे। जिनके लिए अकेलापन एक बेहतर विकल्प है, उनकी बात निराली है।

अकेलेपन की समस्या वैसे लोगों के साथ ही नहीं होती, जो कम मिल-जुल या घुल-मिल पाते हैं। आकर्षक व मिलनसार लोग भी अकेले होने की परिस्थिति से जूझते हैं और कई लोग अकेलेपन के कारण आत्महत्या द्वारा अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेते हैं। सामाजिक स्तर पर दिखावापन, बनावटीपन, नाटकीयता, ढोंग, पाखण्ड, आडंबर से परिपूर्ण औपचारिकताएँ नियामक-शक्ति के रूप स्थापित होकर दिनोंदिन अधिक छाती जा रही हैं। औपचारिकताओं का एक सीमा तक महत्त्व है, पर जहाँ केवल इन्हीं पर जोर होता है, वहाँ स्वाभाविकता-वास्तविकता और आत्मीयता समाप्तप्राय होती है। आज का व्यक्ति बाह्य प्रदर्शन के प्रति ज्यादा सावधान है चाहे दिल में प्रदर्शन के विपरीत-विरुद्ध भाव ही क्यों न हो। बहुत जगह औपचारिकताएँ भी गायब हो रही हैं। आंतरिक लगाव, प्रेम, स्नेह आदि भाव दिखावे तक सीमित हो गए हैं। इस कारण आदमी आंतरिक संतृप्ति से वंचित है; बेचैन, उद्विग्न, क्षुब्ध और उपेक्षित है, कम से कम मन-मस्तिष्क में ऐसा सोचता है। ऐसी स्थिति अधिक खतरनाक होती है, क्योंकि सामने रिश्ते-संबंधों, हित-दोस्तों सहित अपनों का जमावड़ा होता है जबकि अंदर सूनापन। ऐसा लोकप्रिय कहे जाने वाले नेताओं, अभिनेताओं, खिलाड़ियों के साथ भी होता है, जिनके अपने कहलाने वाले दावेदारों की कमी नहीं होती। भीड़ से घिरे रहने वाले लोग एकांत के लिए फुर्सत बड़ी मुश्किल से निकाल पाते हैं। लोकप्रिय राजनेता अटल विहारी वाजपेयी ने लिखा है- 'अपनों के मेले में मीत नहीं पाता हूँ। गीत नहीं गाता हूँ।'

वर्तमान की विडंबना है कि व्यक्ति अकेले होकर भी अकेले नहीं है और साथ होकर भी साथ नहीं है, अर्थात् वह अकेला होते हुए भी पचास तरह की उलझनों से ग्रस्त है, साथ होने का स्वांग रचता है और अकेलेपन के लाभ जैसे एकांत-एकाग्रता और संशयहीन मस्तिष्क वाला नहीं है। दूसरी ओर, साथ-साथ रहकर अपनत्व-आत्मीयता और स्नेह-प्रेम भाव से दूर, बहुत दूर है। हिन्दी फिल्म के गीत में यह भाव उजागर है- 'एक में भी तन्हाँ थे, सौ में भी अकेले हैं।' और 'हर तरफ उजाला है, दिल में एक अँधेरा है।' आदमी बचपन से सुनता-सोचता है कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' समाज में ही वह अपना विकास कर पाता है, फलतः वह अकेले होने से खौफ खाता है। झूठा ही सही, उसे मन-बहलाव के लिए कोई न कोई चाहिए। 'एकता में बल है', 'संघे शक्ति कलियुगे' भी यों ही तो नहीं कहा गया है। व्यक्ति मोटे रूप में अधिक सामूहिक है, जबकि बारीकी में ज्यादा अकेला-अन्तर्मुखी। 'अकेला चना भाँड़ नहीं फोड़ता' आदि लोक प्रचलित मुहावरे अकेलेपन की सीमा दर्शाते हैं।

निस्संगता भयाक्रांत करती है। यह एक समस्या-बीमारी की तरह है, जो अपना औषधि-उपचार, नर-नारी साहश्र्च से लेकर सगे-संबंधियों, हित-दोस्तों, प्रशंसक-फैन कहे जाने वाले समुदाय तक में खोजती है। कामायनी में लिखा गया है कि -

अपने में सब कुछ भर कैसे, व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।

कहा गया है कि नारी के साहचर्य से पुरुष महान बनता है और हर सफल पुरुष के पीछे एक नारी का हाथ होता है। क्या इसे उलटकर कहा जा सकता है कि हर सफल नारी के पीछे एक पुरुष का साथ है? पता नहीं ऐसा कहीं कहा गया है या नहीं। परंतु इसके साथ यह भी सच है पुरुष या नारी में यदि थोड़ी-बहुत महानता हो, तो वह एक-दूसरे के संसर्ग से दूषित ही नहीं, नष्ट भी होती है। कहने की जरूरत नहीं कि आज यह 'महानता' क्यों एक दूसरे से क्षुब्ध है। इस विक्षुब्धता में व्यक्ति अपनी जिन्दगी तो समाप्त कर ही रहा है, साथ ही विक्षुब्धता के कारक आलंबन को भी तबाह कर रहा है। संघर्ष का भाव बिल्कुल सिमट-सिकुड़ गया है।

असंगता सच्ची स्वतंत्रता है, अपने अस्तित्व और अस्मिता को आत्माभिमुख बनाती है, पहचान को फालतू व दूर की चीजों से हटाकर अपने से जोड़ती है। एक बड़ी ऊर्जा-शक्ति का केन्द्र व्यक्ति को बनाती है। इसलिए जो अकेले में आनंदित रह लेता है, उसे भय, आतंक, दुख डिगा नहीं पाते। जन्म-मृत्यु अकेले होती है। जहाँ यह साथ-साथ दिखती है, वहाँ भी होती अकेले ही है। फिर अकेले कर्म-संघर्ष करने से डर कैसा? 'कामायनी' में मनु ने अपनी व्यग्रता में भी संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया है-

लो चला छोड़ में आज यहीं संचित संवेदन भार-पुंज
मुझको काँटे ही मिलें, धन्य हो तुम्हें समर्पित कुसुम कुंज।

अकेलापन नियति व वास्तविकता दोनों है। सारी भीड़ की परिणति भी एकदिन अकेला होना ही है। फिर भी साथ रहने से डर नहीं लगता, पर अकेले में अपने साथ रहने से डर लगता है। इसलिए उल्टी-सीधी व्यस्तता में रहना पड़ता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो अपने साथ नहीं रह सकता, वह दुनिया के साथ भी नहीं रह सकता, रहने का दिखावा जरूर करता है। जीवन में जितनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ है, वे अकेले की हैं। परीक्षा, ईश्वरोपासना, योग, ध्यान सब अकेलेपन की क्रियाएँ हैं। इनमें यदि भीड़ हो, तब भी अकेला-एकाग्रचित्त होना अनिवार्य है। जो अकेले चलने की कला में निपुण होता है, वही सच्चा पुरुषार्थी, परमवीर है। वैसे अकेले में भी केवल अपने 'आत्म' के साथ रहना कठिन है, क्योंकि 'खाली मन शैतान का घर'। फिर भी असंगता और असंबद्धता अधिक आदमियत भरती है। जिसके बारे में अज्ञेय ने कहा है कि विशिष्ट व्यक्तित्व है तो अकेला, पर स्नेह-सिक्त, मदमस्त, गर्वीला और विलक्षण होने के बावजूद समाज-हित के लिए तत्पर है। 'यह दीप अकेला स्नेह भरा/ है गर्व भरा मदमाता पर/ इसको भी पंक्ति को दे दो।' भीड़ इकट्ठा करने की कला नेतृत्व क्षमता की विशिष्टता है, वैसे ही अकेले में एकाग्रचित रहना यानी मन को स्थिर रखना कला है। इसमें व्यक्ति दिखावे से दूर रहता है, मोहासक्ति से परे हो जाता है और अपनी आत्मा के सन्निकट पहुँच सकता है। आत्मा से निकट होने पर परमात्मा से दूर नहीं हो सकता। इसलिए अकेला होना कोई त्रासदी नहीं, वरन् नियति का प्रदत्त वरदान है, जहाँ आत्म की असलियत की पहचान से लाभ ही लाभ है। ❋